मनमोहन सिंह : एक सफल प्रधानमंत्री

कहा जाता है कि मनमोहन सिंह के अंदर राजनीति की समझ नही है। मेरी समझ मे कोई गैर राजनीतिक व्यक्ति प्रधानमंत्री बन जाए तो, यह कोई बुराई नही है। मनमोहन सिंह अन्य राजनेताओं की तरह कलाकारी नही करते, नाटकबाज नही है। गरीब के बच्चे को गोद मे उठाकर उसके प्रति करूणा का नाटक करना, अलग– अलग प्रदेशों मे जाकर उन प्रादेशिक भाषाओं मे दो–चार शब्द बोलकर लोंगों का मन जीत लेना, शब्दाडम्बर युक्त भाषण देकर भीड को मोहित कर लेना अथवा प्रत्यक्ष छूट देकर परोक्ष रूप से ले लेना, यदि राजनीति का गुण है और मनमोहन सिंह ऐसा नही कर पाते, तो मै मनमोहन सिंह का प्रशंसक हूँ। ऐसा व्यक्ति असफल सिद्ध किया जा सकता है किन्तु वास्तव मे असफल होता नही।

मनमोहन सिंह सफल अर्थशास्त्री रहें हैं, अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए उनके मुकाबले मे भारत मे तो कोई अन्य सफल नही हो सका। 2009 के बाद अर्थव्यवस्था को राजनीति की कलाबाजियों ने असफल किया। मनमोहन सिंह ने भरसक कोशिश की कि अर्थव्यवस्था पटरी से ना उतरे किन्तु जब उन्हें महसूस हुआ कि अर्थव्यवस्था पटरी से उतर नही रही है, बल्कि जानबूझकर सोनिया जी द्वारा उतारी जा रही है, तब उन्होने हथियार डाल दिया। 2009 तक सोनिया जी की नीयत अर्थव्यवस्था के मामले मे ठीक–ठाक थी। 2009 के बाद ही उनकी नीयत मे खोट आया। चाहे कोई भगवान भी अर्थशास्त्री बनकर आ जाए, तो यह कैसे संभव है कि खर्चा बढता चला जाए और आमदानी घटती जाए। यह कैसे संभव है कि बजट घाटा बढते जाए, नये–नये नोट छपतें जाएं और मुद्रास्फीति ना बढे। यदि इतनी सामान्य सी बात भी हमारे मित्रों या पाठकों को समझ ना आवे तो मै क्या करूँ ? 2007 मे जब नरेगा चालू हुआ था, तो नरेगा की न्यूनतम मजदूरी 60 रूपये घोषित थी। 60 रूपये मे भी बेरोंजगारों की संख्या बहुत बडी थी और बडी मुश्किल से कुछ परिवारों के एक सदस्य को सौ दिन के रोजगार की गारंटी थी। आज सात वर्षों मे ही विभिन्न दबावों के अंतर्गत नरेगा की मजदूरी को बढाकर नरेगा की मजदूरी को ढाई से तीन गुणा कर दिया गया, और वह भी वर्ष भर के लिए करा दिया गया। क्या बिगड जाता यदि मनमोहन सिंह पर इतना दबाव डालने की अपेक्षा स्वाभाविक गति से बढने दिया जाता और बजट घाटा इतना नही बढता। संभव है कि नरेगा की मजदूरी जो आज है, इससे दस या पंन्द्रह प्रतिशत कम बढी होती। मनमोहन सिंह ने कई बार प्रयास किया, सोनिया जी को भी समझाया और देश को भी बताया कि ऐसा उचित नही किन्तु किसी ने एक ना सुनी और सोनिया ने जब अपना वीटो पावर लगा दिया तो मनमोहन सिंह ने सरेंडर कर दिया।

गरीबी रेखा के विषय मे, मैने विभिन्न विद्वानों के लेख पढे। हरिभूमि 25 मार्च 2012 के पृष्ठ छः पर कुछ अलग–अलग विद्वानों के लेख संग्रहित हैं–तथाकथित विद्वान लेखक निरंकार सिंह, अवधेश कुमार, अलका आर्य, प्रभात कुमार राय आदि के अलग–अलग लेख संग्रहित हैं। सबने मोनटेक सिंह अहलूवालिया और मनमोहन सिंह द्वारा घोषित गरीबी रेखा को 28 रूपये बताने पर या तो इनकी आलोचना की है अथवा मजाक उडाया है। विभिन्न टी.वी. चैनलों ने तो कितना नाटक किया वह सबने देखा। किसी ने किसी होटल मे जाकर एक कप चाय का दाम 15 रूपये बताया तो किसी ने किसी होटल मे जाकर 28 रूपये मे आधे पेट भोजन भी ना मिलना बताया। ऐसा लगा जैसे अनेक तथाकथित विद्वान लेखक अथवा टी.वी. चैनल कहीं से पैसे के बल पर संचालित हो रहें हैं, जो तथ्यों को तोड–मरोडकर उनके ऐसे भवार्थ प्रस्तुत कर रहें हैं। आज तक किसी लेखक या टी.वी. चैनल ने यह नही बताया कि आज से चार–पॉच वर्ष पूर्व गरीबी रेखा बारह रूपये के आसपास थी। किसी मोदी ने कभी यह नही बताया कि भाजपा के कार्यकाल मे गरीबी रेखा कितने रूपये घोषित थी। प्रश्न उठता है कि इस यथार्थ को छिपाने के पीछे उन तथा–कथित विद्वानों का क्या उद्देश्य रहा होगा? योजना आयोग ने जो ऑकडा प्रसारित किया उसके अनुसार गरीबों की संख्या घटी है, इसका भी देश भर के पेशेवर लोगों ने बहुत मजाक उडाया। उन्होनें कभी यह विचार नही किया कि मूल्यों को मुद्रास्फीति के साथ जोडने के बाद ही कोई ऑकलन हुआ करता है। एक बिना ऑख वाला भी देख सकता है, कि पिछले दस वर्षों मे जीवन स्तर मे सुधार आया है, फिर भी ये ऑख वाले विद्वान पता नही क्यों जानबूझकर कहतें हैं कि गरीबी बढी है, या गरीबों की संख्या बढी है। स्पष्ट दिखता है कि मनमोहन सिंह को एक ओर तो आर्थिक मोर्चे पर असफल करने का प्रयास किया गया तो दूसरी ओर प्रचार के मुद्दे पर भी उन्हें असफल सिद्ध करने मे कोई कोर–कसर बाकी नही छोडी गई। मेरा स्पष्ट संकेत है कि दोनो मोर्चों पर एक साथ प्रयास करने का कार्य किसी साधारण हस्ती के बस की बात नही थी और वह हस्ती सोनिया जी के अलावा कोई नही।

सुप्रीमकोर्ट ने तो और भी कमाल का काम किया, जब उसने राजनेताओं के समान लोकप्रियता की प्रतियोगिता मे स्वयं को शामिल कर लिया। सुप्रीमकोर्ट ने बार बार यह कहकर अपनी विश्वसनीयता घटाई कि गोदामो मे सडता हुआ अनाज गरीबों मे मुफ्त बॉट दिया जाए। अनाज ना सडे यह सुप्रीमकोर्ट की चिंता का विषय हो सकता है। सरकार सडते हुए अनाज को चाहे विदेश भेजे अथवा बाजार मे बेच दे अथवा उपभोंक्ताओं को सस्ता दे दे अथवा गरीबों को मुफ्त मे दे दे, ऐसी सलाह तो संभव है किन्तु यह कैसे संभव है कि बजट से बाहर जाकर अनाज को मुफ्त मे दे दिया जाए। आप सोचिए कि सारी आलोचनाओं को झेलते हुए भी मनमोहन सिंह ने सुप्रीमकोर्ट की सलाह ना मानकर जितनी हिम्मत का काम किया, उसके बाद भी क्या वे प्रशंसा के पात्र नही है। यदि वे चाहते तो मुफ्त मे अनाज को बॉटकर प्रशंसा ले लेते, भले ही उसके लिए और नोट छापने पडते, भले ही मुद्रस्फीति और बढ जाती, भले ही डॉलर के मुकाबले रूपया और

गिर जाता। मैने अनेक ऐसे मुद्दों मे से कुछ आर्थिक मुद्दें ही आपके सामने रखें हैं जो यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि मनमाहन सिंह के साथ अन्याय हुआ है, अत्याचार हुआ है और मैं ऐसे अन्याय, अत्याचार मे पाप का हिस्सेदार नही बन सकता। आप सब पाठक अपनी आलोचनाएं भेज सकते हैं।

1. ओम प्रकाश मंजुल, बरेली उ.प्र.

प्रश्नः—तलवार दम्पति द्वारा अपनी बेटी को अपने ही नौकर के साथ शारीरिक संबंध बनाते देखकर, तलवार दम्पति अपनी भावनाओं पर नियंत्रण नहीं रख सके, और अपनी बेटी तथा नौकर की हत्या कर बैठे। सीबीआई की अदालत में मुकदमा चला और न्यायालय ने दोनो को दोषी पाकर आजीवन कारावास से दण्डित किया।

1: क्या दोनो दया के पात्र नही थे?

2: क्या इससे भी अधिक पेशेवर अपराधी खुले नहीं घूम रहें हैं?

3: क्या इस मामले मे कठोर दण्ड समर्थक स्वयं के ऐसे ही किसी मामले में शांत रहने की क्षमता रखतें हैं ?

4: क्या ऐसे प्रकरण मे उत्तेजित होना मानव स्वभाव नही है?

5: क्या ऐसे मामलों पर बढ—चढ कर टिप्पणीं करने वाले मीडिया कर्मी, न्यायपालिका के लोग अथवा अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं का स्वयं का व्यक्तिगत आचरण बिल्कुल कानून के अनुसार ठीक रहता है ?

आप इस घटना को केन्द्र मे रखकर कुछ ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें।

उत्तरः— यह लगभग निश्चित हो चुका है कि तलवार दम्पति ने ही अपनी पुत्री और नौकर की हत्या की। दोनो अपराधी थे, अपराधियों पर दया करने का अधिकार न्यायालय को नही है। किसी भी संवैधानिक पद पर बैठा हुआ कोई व्यक्ति संवैधानिक दायित्व पूरा करने मे दया नही कर सकता, क्योंकि दया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्तर पर कर सकता है, संवैधानिक स्तर पर नही। वैसे भी न्यायाधीश को न्याय करने का अधिकार नही है, न्यायाधीश तो कानून के अनुसार ही न्याय कर सकता है, कानून से हटकर नही। यदि कोई कानून न्याय के विपरीत भी होगा तो न्यायाधीश कानून के अनुसार ही काम करेगा। मैं इस बात से सहमत हूँ कि किसी भावना या उत्तेजनावश हुए आकस्मिक अपराध तथा सोच समझकर योजनापूर्वक किये गये अपराध के दण्ड मे फर्क होना चाहिए, किन्तु यह काम विधायिका का है कि वह कानून बनाते समय इस बात का ध्यान रखे। तलवार दम्पति द्वारा किया गया अपराध न तो माफ करने लायक था जैसा कि आपने कहा है और न इतने कठोर दण्ड देने लायक था, जैसा उन्हें न्यायालय से दिया गया। यदि सारी परिस्थितियों को देखते हुए आठ से दस वर्ष की सजा होती तो पर्याप्त थी।

यह सच है कि तलवार दम्पति के अपराध से भी अधिक गंभीर अपराध करने वाले समाज मे खुले घूम रहें है। अनेक अपराधों का तो पता ही नही चलता। कुछ पुलिस से मिलकर छूट जाते हैं, कुछ न्यायालय तक पहुँचते हैं, वे भी सामान्य गति से आगे बढते रहते हैं, क्योंकि हजारों मे एक मामला ही मीडिया के पंखों पर सवार होकर इतनी तेजी से आगे बढ पाता है, जैसे तलवार दम्पति का मामला बढा। इन सब मामलो मे न्यायाधीशों को अप्रभावित रहना चाहिए, जो वे नही रह पाते और मीडिया मे बहुचर्चित मामलों से वे भी प्रभावित होते हैं। यह अनुचित होते हुए भी हम सबकी मजबूरी है कि हम इसमें कुछ नही कर पाते। मीडिया तो अपने व्यावसायिक लाभ के लिए अपना न्यूसेन्स वैल्यू बढाता है और इसी के लिए वह हजारों मे किसी एक केश को लेकर उसे बहुचर्चित कर देता है। समाज मे स्थापित लोग जो स्वयं भी यदा कदा वैसी गलतियॉ करतें हैं या कर सकते हैं, यदि उनके साथ भी वैसा ही हो। किन्तु ऐसे अधिकांश लोग अपने आचरण पर पर्दा डाले रखने के लिए, ऐसे बहुचर्चित मामलों को ज्यादा उछालते हैं। उन्हें डर होता है कि सच बात बोल देने से वे स्वयं भी संदेह के घेरे मे आ जाएगें या बहस मे पड जाएगें। इसलिए वे ऐसी हवा मे बहना अपने लिए लाभदायक समझतें हैं। यही कारण है कि सब प्रकार के नेता लोग, सामाजिक कार्यकर्ता या उच्चपदाधिकारी भी मीडिया द्वारा उछाले गए, किसी प्रकरण विशेष के साथ जुडकर बहती गंगा मे हाथ धो लेना चाहते हैं। न्यायाधीश भी ऐसे मामलों मे स्वयं को झंझट मे नही डालना चाहते।

ऐसे मामलों मे उत्तेजित होना या नही होना अपने व्यक्तिगत स्वभाव पर निर्भर करता है। इसके लिए कोई स्पष्ट नियम नही है ना ही यह औसत नागरिक स्वभाव के साथ जोडा जा सकता है। आरूषि—हेमराज जैसे संबंधों से उत्तेजित होकर कोई अपने परिवार मे वैसा कर भी सकता है और नही भी कर सकता। ऐसी घटनाएँ बहुत होती है, किन्तु ऐसी हत्याएं बिरले ही होती है। हो सकता है इससे भी ज्यादा जघन्य कृत्य कोई कर दे अथवा यह भी संभव है कि कोई चुपचाप शांति से कोई हल निकाल ले। चाहे कुछ भी हो किसी भी परिस्थिति मे हो हत्या करने की छूट नही दी जा सकती। इतना ही संभव है कि परिस्थिति देखकर हत्या की गंभीरता को कम ज्यादा समझा जा सकता है। मैं सहमत हूँ कि आरूषि—हेमराज की हत्या की गंभीरता को इतनी जटिलता नही प्रदान करनी चाहिए थी।

मैं जानता हूँ कि कानून के अनुसार आचरण करने वाले लोग तो अपवाद स्वरूप ही मिलेंगें। अन्यथा कानूनो को तोडना या बच निकलना यह या तो हमारा स्वभाव है या मजबूरी। किन्तु ऐसे मामलों मे बढ—चढ कर चर्चा करने वालों मे अधिकांश लोग वैसी गलतियॉ करते हैं अन्यथा अच्छे लोग बढ—चढ कर ऐसी चर्चाओं मे भाग नही लेते। ऐसी घटनाओं को आधार बनाकर चर्चाओं को हवा देने वाले अधिकांश लोगों का ऑतरिक स्तर संदेहास्पद ही होता है फिर भी हमारे आपके पास ऐसी समस्याओं का कोई ऐसा समाधान

नही दिखता कि हम कुछ कर सकेगें। आपने बहुत हिम्मत करके ऐसे प्रकरण को उठाने का प्रयास किया इसके लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं।

2. चिन्मय व्यास, मालदेवता देहरादुन, उत्तराखण्ड।

प्रश्नः ज्ञानतत्व 279 मे आपने सत्ता के विकेन्द्रीकरण की बात कही है, जो बहुत महत्वपूर्ण है। मुझे लगता है कि हमे सारा ध्यान और शक्ति ''सत्ता के विकेन्द्रीकरण'' पर लगानी चाहिए। लोकसंसद की बात मनवाना बहुत मुश्किल है, मगर सत्ता के विकेन्द्रीकरण की बात तो अनेक विचारक और अनेक संस्थाऍ कह रही हैं। यह सर्वमान्य कार्यक्रम है इसी पर पूरा जोर लगााना चाहिए तो संसद के मनमाने पन का प्रभाव कम हो जावेगा, संसद की शक्ति ही क्षीण हो जायेगी।

उत्तर– विकेन्द्रीकरण तथा लोकसंसद के ऑदोलनों मे से कौन सा अधिक कठिन है, इस पर अलग–अलग सोच है। विकेन्द्रीकरण का अर्थ होगा संसद के विधायी तथा कार्यपालिक अधिकारों मे कटौती करके, वे अधिकार नीचे की इकाई को देना। गॉधी जी भी ऐसा ही चाहते थे, जयप्रकाश जी भी ऐसा ही चाहते थे, ठाकुर दास बंग भी जीवन भर विकेन्द्रीकरण के लिए लडते रहे और अन्ना हजारे भी इसी के लिए लडते रहे, किन्तु हम जरा भी सफल नही हो सके। इसके विपरीत विधायिका और कार्यपालिका के हमारे हर प्रकार के सामाजिक मामलो मे हस्तक्षेप बढता चला गया। यदि विकेन्द्रीकरण की लडाई जरा भी सफल होती दिखती तो मै लोकसंसद की दिशा मे नही पडता। मै समझता हूॅ कि लोकसंसद की सफलता विकेन्द्रीकरण की लडाई से कुछ आसान भी है और प्रभावी भी। यदि हमने किसी तरह लड भिड कर विकेन्द्रीकरण मे सफलता प्राप्त कर ली और संविधान संशोधन का अधिकार संसद के पास ही रहा तो संसद कभी भी हमारी उस सफलता को जनहित बोलकर वापस कर सकती है। हरियाणा मे जनहित मे शराब बन्द करायी गई थी और पॉच वर्षो के अंदर ही जनहित मे फिर शुरू हो गई। यदि जनहित की परिभाषा तय करने का अधिकार उन्हीं के पास रहेगा तो हमारी लडाई का परिणाम कभी भी धोखा दे सकता है, किन्तु यदि संविधान संशोधन का अधिकार संसद के पास से संशोधित हो जाए, तब वे जनहित की परिभाषा अकेले तय नही कर पायेगें। इसलिए ही हमने लोकसंसद के मुद्दे को हाथ मे लिया है।

3. सत्यपाल शर्मा, उमरसिया बरेली उ.प्र.।

प्रश्न–पत्रकारिता आज एक विषम दौर से गुजर रही है। पत्रकारिता का स्तर गिर रहा है। विज्ञापनों की चकाचौंध, खबरों को तोड मरोडकर प्रस्तुत करना, पैसे लेकर खबरें छापना, चापलूसी करना आम बात हो गई है। पत्रकारों मे संवेदनशीलता, सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता घट रही है। पत्रकार राष्ट्र के प्रहरी हैं उन्हें राष्ट्रीय समस्याओं तथा राष्ट्रीय धन के अपव्यय मे जिम्मेदारी के साथ जन जागरण करना चाहिए। इस बारें मे अपने विचारों से अवगत कराने का कष्ट करें।

उत्तरः– समाज मे कुछ लोग ऐसे होतें हैं जो कर्तव्यों की अपेक्षा अधिकारों की चिंता अधिक करतें हैं। अन्यथा अधिकॉश लोग अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों की चिंता करते देखे जातें हैं। अधिकार प्राप्त लोग समाज को कर्तव्य करने की प्रेरणा देते हैं और स्वयं कर्तव्य के प्रति जागरूक नही होते। ऐसे लोग समाज के अगुवा होतें हैं, समाज ऐसे लोंगों के पीछे चलता है। अधिकार प्रधान लोग आदर्श को व्यावहारिक बनाकर उनके अनुसार अपनी क्रियाओं को ढाल लेतें हैं जबकि शेष समाज से ये लोग व्यावहारिता को आदर्श के रूप मे ढालकर देखना चाहतें हैं। आपने पत्रकारिता से अनेक आदर्श अपेक्षाऍ कीं जो उचित नहीं है। पत्रकारिता लोकतंत्र का पहला स्तंभ नही है, बल्कि चौथा स्तंभ है। आपने चौथे स्तंभ से जो अपेक्षाऍ की हैं उनमे से शेष तीन स्तंभों का आचरण कैसा है इस पर भी विचार करना चाहिए। विधायिका शत–प्रतिशत व्यावसायिक हो गई है, कार्यपालिका भी लगभग विधायिका के समान ही हो रही है तथा न्यायपालिका भी निरंतर उसी ओर अग्रसर है। तब चौथे स्तंभ से आप कैसी उम्मीद रखतें हैं ? हमे पत्रकारिता पर विचार करते समय इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि पत्रकारिता किसी तरह से भी सामाजिक दायित्व ना होकर सिर्फ सामाजिक कर्तव्य मात्र है। दायित्व तथा कर्तव्य मे अन्तर स्पष्ट है। विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका सामाजिक दायित्व है सामाजिक कर्तव्य मात्र नही है, क्योंकि इन तीनो को समाज अपनी ओर से वेतन देकर कार्य के लिए नियुक्त करता है। पत्रकारिता उस प्रकार नही है। पत्रकारिता तो एक सीधा–सीधा व्यवसाय है। किसी व्यवसायी अथवा व्यावसायिक कार्य से आप वैसी अपेक्षा नही कर सकते जैसी अपने वेतन भोगी से। विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के लोग यदि अपने दायित्व पूरा करने मे घपला करतें हैं तो वह तीन नम्बर का कार्य माना जाता है, अपराध माना जाता है, समाज विरोधी कार्य माना जाता है। जबकि किसी व्यवसायी द्वारा टैक्स चोरी अथवा किया गया कोई असामाजिक कार्य दो नम्बर का माना जाता है, गैर कानूनी तक ही माना जाता है। पत्रकारिता किसी भी रूप मे उन कार्यों मे शामिल नही है बल्कि पत्रकारिता सिर्फ दूसरे प्रकार के कार्यों मे ही शामिल है, जो अनैतिक कार्य तो हो सकता है किन्तु अपराध नही, असामाजिक कार्य तो हो सकता है किन्तु समाज विरोधी नही, दो नम्बर का कार्य तो हो सकता है किन्तु तीन नम्बर का नही। जब समाज के प्रमुख स्तंभ अपने दायित्व से मुंह मोड लेतें हैं तो पत्रकारिता से ऐसी अपेक्षा करना उचित नही दिखता। यह अवश्य है कि यदि पत्रकारिता आगे बढकर ईमानदारी से कार्य करना शुरू कर दे तो यह उसकी आदर्श स्थिति मानी जाएगी, किन्तु यदि वह ऐसा ना भी करे तो वह समाज के सामान्य स्तर से इतनी नीचे नही मानी जाएगी, जिसके लिए पत्रकारिता की ओर कोई अलग से इशारा किया जाए। मेरा आपसे निवेदन है कि आप अपने कथन पर फिर से विचार करें।

4. योगिन गुर्जर, शोलापुर महाराष्ट्र

प्रश्नः—जब सरकार बनाने के लिए सांसदो या विधायकों के आधें से अधिक सदस्यों की आवश्यकता अनिवार्य है, तो आम चुनावों मे आधे से अधिक मत प्राप्त करना अनिवार्य क्यों नही? आम—तौर पर देखा जा रहा है कि कुल मतदान का एक तिहाई मत और कभी—कभी तो एक चौथाई मत पाने वाला भी चुनाव जीतकर विधायक या सांसद बन जाता है। जबकि मतदाताओं का तीन चौथाई या उससे भी अधिक उस निर्वाचित जन प्रतिनिधि के विरूद्ध रहता है। यदि ऐसी प्रणाली विकसित हो जाए कि आधे से अधिक वोट प्राप्त करना, अनिवार्य हो जाए तो व्यवस्था बहुत कुछ सुधर सकती है। यदि प्रारंभिक चुनाव मे किसी उम्मीदवार को आधे से अधिक वोट नही मिलते तो दो निकटमत उम्मीदवारों के बीच दुबारा मतदान कराने की प्रणाली विकसित करनी चाहिए।

उत्तरः—निर्वाचन का महत्व सापेक्ष होता है निरपेक्ष नही। महत्व उस कार्य को दिये जाने वाले महत्व से तौला जाता है। यदि किसी ऐसी तिजोरी का पहरेदार रखा जाए, जिस तिजोरी मे पच्चीस हजार से ज्यादा रखा ही नही जाता, तो उस पर नियुक्त किए जाने वाले पहरेदार की अपेक्षा उस पहरेदार की नियुक्ति मे अधिक सतर्कता बरतनी पडती है, जिस तिजोरी मे करोडों रूपया रखा जाता हो, और यदि रखे जाने वाले धन की मात्रा अरबों मे होगी तो, पहरेदारों की नियुक्ति मे उतनी ही अधिक सतर्कता बरतनी पडेगी। कलेक्टर के पद के लिए आईएएस चयन मे जितनी सतर्कता अपनानी पडती है, उसी कलेक्टर के अंतर्गत कार्य करने वाले किसी चपरासी की नियुक्ति के लिए उसके दसवें भाग के बराबर भी सतर्कता नही अपनाई जाती। जब स्वतंत्रता के बाद के प्रारंम्भिक वर्षों मे चुनाव प्रणाली विकसित हो रही थी, तब ऐसा अंदाज नही था कि संसद समाज के सारे कार्य अपने पास समेटकर इतनी महत्वपूर्ण हो जाएगी। उस समय तो सोचा गया था कि समाज के सभी अंग अपना—अपना कार्य करेगें और उन्हीं अंगों मे से एक अंग संसद भी होगी। हम आज भी देखतें हैं कि किसी धर्मशाला के चुनाव मे वैसी मारा—मारी नही होती जैसी सांसद के चुनाव मे, क्योंकि धर्मशाला के अध्यक्ष और किसी सांसद के अधिकारों मे असीमित अंतर होता है। आज की परिस्थिति के अनुसार तो आपका सुझाव ठीक दिखता है कि सांसद के चुनाव मे और अधिक सतर्कता बरती जाए और उसकी प्रणाली मे कुछ फेरबदल किया जाए।

किन्तु इस समस्या का एक और समाधान हो सकता है, कि निर्वाचन प्रणाली को अधिक मजबूत करने की अपेक्षा निर्वाचित जन प्रतिनिधी के अधिकार, दायित्व, हस्तक्षेप और अवसर को ही घटा दिया जाए, तो निर्वाचन का महत्व भी अपने आप कम हो जाएगा, और उसमे होने वाली मारा—मारी भी कम हो जाएगी। अर्थात यदि परिवार, गॉव और जिले को और अधिकार दे दियें जाएं तथा सरकार और सांसद को कुछ ही अधिकारों तक सीमित कर दियें जाएं तो आपके सुझावों का महत्व अपने आप घट जाएगा क्योंकि यदि ऐसा नही हुआ तो दूसरा चुनाव भी इतना ही खर्चीला होगा, जो बोझ बन जाएगा। एक तरीका और भी हो सकता है कि प्राथमिक निर्वाचन के समय सौ—सौ मतदाता एक—एक अन्य व्यक्ति का चयन कर ले और यदि दुबारा मतदान करने की नौबत आए तो ये कुछ हजार लोग ही वोट देकर दूसरा चुनाव करा दें यह भी संभव है। मेरा तो अपना विचार है कि अधिकारों का विकेंन्द्रीकरण इस समस्या का सर्वश्रेष्ठ समाधान हो सकता है।

5. बाबूराम सैनी— फरीदाबाद हरियाणा।

प्रश्नः— ज्ञानतत्व 273 पढा। जिन राजनैतिक बिन्दुओं, जैसे राइट टू रिकाल, राइट टू रिजेक्ट आदि विषयों पर आप अपनी बैंठको मे अनेक बार चर्चाएं किया करते थे, आज उन्हीं विषयों के आधार पर राजनैतिक दल बन गये हैं। लेकिन कृषक और मेहनत करने वालों की स्थिति दयनीय से भी नीचे गिरती चली जा रही है। किसान आत्म हत्या कर रहें है। मजदूर नशें मे मदहोश होकर मरने को लाचार है। न्याय की भाषा अंग्रेंजी अनिवार्य है। हिन्दी की मॉग करने वाले श्यामरूद्र पाठक एवं गौचर भूमि के ऑदोलनकारी गोपाल दास जी भी अस्पतालों और तिहाड जेंलों मे गिनती मे श्वांस ले रहे हैं। बलात्कार जैसे हत्याकॉण्ड नित्य ना जाने कितनों के प्राण ले रहें हैं। भविष्य की कल्पना करके प्राण बेचैन है। जीवन का समय कम है, कार्य करने बहुत शेष है, कम समय मे देश के लिए अधिक कार्य करने के तरीकों पर सुझाव देने का कष्ट करें। मेरे विचार से अंग्रेंजों द्वारा स्थापित कॉग्रेंस पार्टी का शासन देश हित मे नही हो सकता। अतः कॉग्रेंस नामक कलंक को आमूल—चूल शून्यत्व मे पहुंचाना देशहित मे ही होगा। देश के भविष्य के बारे मे अनुभव बॉटें।

उत्तरः— अब तक ना कॉग्रेंस पार्टी से अधिक नुकसान हो रहा था न ही भाजपा से, परंतु जब से सोनिया गॉधी पुत्र मोह मे फॅसी हैं तथा संघ परिवार इसका लाभ उठाकर सारी सत्ता अपने पास समेटने लगा है, तब से यह खतरा बहुत अधिक बढ गया है। देश के लोगों को सावधान होने की आवश्यकता है।

6. अनिल शर्मा 'अनिल' बिजनौर उ.प्र.।

प्रश्नः— अंक 278—279 मे आर्थिक समस्याऍ व समाधान तथा सम—सामायिक विचार पढा। निश्चित रूप से ज्ञानतत्व भरपूर वैचारिक खुराक देता है। पाठकों के प्रश्नों का समुचित उत्तर मिलता है। क्या किसी भी दल ने साम्प्रदायिक द्वेष को बढने से रोकने का ठोस प्रयास किया? आज तक जो प्रयास हुए वे तो मात्र दिखावा व वोट बैंक की राजनीति तक सीमित है, उपाय क्या होगा?

उत्तरः— इस्लाम पूरी दुनिया मे एक संगठन है जो शतप्रतिशत सांम्प्रदायिक है। इस्लाम को विचारों के आधार पर चुनौती देने की अपेक्षा सांम्प्रदायिक आधार पर चुनौती देने का बीडा उठाया संघ परिवार ने और इस तरह हिन्दुत्व ही अपने विचारों से हटकर सांम्प्रदायिकता

की ओर बढने लगा। सांम्प्रदायिक तत्व हमेशा ही सत्ता की साझेदारी की ओर मुँह देखते रहतें हैं। स्वतंत्रता के पहले भारत गुलाम था और सत्ता से सहानुभूति रखना संघ की मजबूरी थी। हिन्दु महासभा तो स्वतंत्रता के पूर्व ही सत्ता संघर्ष मे शामिल हो गई, किन्तु संघ परिवार ने सत्ता के साथ ताल–मेल करना उचित समझा और यही कारण है कि स्वतंत्रता संघर्ष मे संघ परिवार की कोई उल्लेखनीय भूमिका नही मिलती बल्कि यदा–कदा अंग्रेंजों के साथ अच्छे संबंधों की बात आती है। स्वतंत्रता के बाद कुछ महीने भी नही बीते थे कि संघ परिवार पूरी ताकत से सत्ता संघर्ष मे कूद पडा। चूँकि इस्लाम संगठन के रूप मे सत्ता से दूर था, इसलिए संघ परिवार का सीधा टकराव या तो गॉधी विचार धारा से हो अथवा कॉग्रेंस पार्टी से, संघ परिवार ने सांम्प्रदायिकता के मुददे पर कभी पीछे मुडकर नही देखा और धीरे–धीरे कॉगेंस पार्टी भी हिन्दू इतर सांम्प्रदायिक तत्वों से समझौते करने के लिए मजबूर हो गई। स्वतंत्रता के शीघ्र बाद ही मध्यप्रदेश मे नियोगी कमीशन बना जिसने ईसाइयों के विरूद्ध अनेक गंभीर टिप्पणीयॉ की। उस समय कॉग्रेंस पार्टी भी मुसलमानों के विषय मे लगभग तटस्थ थी किन्तु जैसे–जैसे वोट बैंक मे हिन्दुओं का प्रतिशत संघ परिवार की ओर झुकता गया वैसे–वैसे कॉग्रेंस पार्टी भी मुसलमानों की ओर झुकती चली गई और आज यह स्थिति है कि कॉगेंस पार्टी लगभग पूरी तरह मुसलमानों को प्रसन्न करने मे लगी हुई है। बाद मे धीरे–धीरे अनेक दल भी बने किन्तु सभी मुसलमानों की ओर झुकने के लिए मजबूर होते गये। अर्थात एक भी दल ऐसा नही बचा जो ऑशिक रूप से भी यथार्थ की बात करे। बिलकुल साफ–साफ मुसलमानों का अत्याचार दिखने के बाद भी सभी दल येन–केन प्रकारेण मुसलमानों के पक्ष मे ऑख बन्द कर लेतें हैं। सच बात तो यह है कि इसका सारा दोष संविधान निर्माताओं की नासमझी पर जाता है जिन्होनें संविधान से समान नागरिक संहिता को तथा, समाज व्यवस्था को भी निकाल दिया, परिवार व्यवस्था और गॉव व्यवस्था को भी बाहर कर दिया और इनकी जगह सांम्प्रदायिकता के पोषक द्विअर्थी शब्द धर्म और जाति को डाल दिया। इन सबके समाधान की शुरूवात यहॉ से हो सकती है कि संविधान मे समान नागरिक संहिता को डाला जाए तथा संगठनात्मक धर्म या जाति को निकाल दिया जाए। मेरा तो मत है कि भारत मे संस्था बनाने की तो छूट हो किन्तु संगठन बनाने की संवैधानिक मान्यता समाप्त कर दी जाए। संम्भवतः सांम्प्रदायिकता पर रोक लगनी शुरू हो जाएगी। किसी भी व्यक्ति को अपना धर्म पालन करने की स्वतंत्रता होगी, धर्म के नाम पर संगठित भी हो सकते हैं, किन्तु धर्म के नाम पर बने संगठन के सहारे किसी प्रकार की अधिकार प्राप्ति की लडाई नही लड सकते। मैं जानता हूँ कि इस्लाम तथा संघ परिवार पूरी तरह इस अवधारणा का विरोध करेगें और ये दोनो जितना ही विरोध करेंगें उतना ही धर्म निरपेक्ष ताकतें मजबूत होती जाएगी।

7. जितेंन्द्र निर्मोही : कोटा राजस्थान –9413007724 ।

प्रश्नः– ज्ञानतत्व बराबर मिल रहें हैं, आभारी हूँ। इस युग मे स्वस्थ चिंतन भी एक पुनीत कार्य है और उसे बनाये रखना दुष्कर कार्य–जो आप सफलता पूर्वक कर रहें हैं। पत्रिका का निरंतर स्वरूप बनाये रखना भी जीवंतता की निशानी है।

आज कल प्रगतिशीलता के नाम पर जो हो रहा है वह जगजाहिर है। सवर्णों को अछूत तथा निम्न वर्गों के सांमजस्य के साथ आगे बढना आज का सबसे बडा कार्य है, क्योंकि अनुसूचित जाति के अलावा जो जन–जाति का तबका उच्च पदों पर आसीन हो गया है वह पूरी तरह सामंती व्यवस्था का अनुसरण करने लगा है। उनमे से जो लोग जमीन से जुडें हुएं हैं वे उनके दोषों को कुशलता से दबा रहें हैं। अनुसूचित जाति के कुछ लोग अनावश्यक अपना फ्रस्ट्रेशन निकालतें हैं। उन्हें आज यह याद नही कि उच्च वर्ग के उच्च विचार वाले लोग ही प्रारम्भ मे इनके बराबर मे खाना खाकर और संबंध बनाकर अपनी जात से बेदखल हो गये। ऐसे स्वतंत्रता सेनानियों को छोडकर वे उनको भडकाने वाले लोगों के बहकावे मे आ जाते हैं। इस तरह आज सामाजिक सौहाद्र सबसे बडी समस्या है, संवैधानिक समस्या उसके मूल मे है, जिसे आप बराबर उठा रहें हैं। आप की विचार क्रॉति सराहनीय है।

उत्तरः– किसी भी वर्ग को जब विशेष अधिकार दिये जातें हैं, तब अन्याय तथा अत्याचार बढतें हैं। जिस वर्ग को विशेषाधिकार दिये जातें हैं, उस वर्ग के शरीफ लोगों को ऑशिंक न्याय मिलता है तथा धूर्त लोगों को अन्याय करने के असीमित अवसर प्राप्त हो जाते हैं। ये धूर्त लोग शरीफ लोगों के ऑशिक लाभ का उदाहरण दे देकर अपने लाभ के अवसर स्थाई करते जातें हैं। सच्चाई यह है कि यही अनुसूचित जातियों के साथ भी हुआ अनुसूचित जन–जातियों के साथ भी हुआ तथा महिलाओं के साथ भी हो रहा है। स्वतंत्रता के पूर्व सवर्णों को अथवा पुरूषों को जो विशेषाधिकार दिये गये उनका दुष्परिणाम हुआ कि सवर्णो औार पुरूषों ने वर्ग के रूप मे अनुसूचित जातियों अवर्णों तथा महिलाओं को दबा दिया। व्यक्ति मे शराफत या दुष्टता के अलग–अलग गुण होते हैं इनका जाति धर्म या लिंग से कोई संबंध नही होता न ही ऐसी कोई सीमाऍ होती हैं। वर्गों मे कभी ये गुण समान नही होते। न सभी हरिजन आदिवासी शरीफ होतें हैं, न सभी दुष्ट। दुष्ट सवर्णों ने वर्ग के आधार पर सबके साथ समान व्यवहार किया जो गलत था। डॉ. भीमराव ऍम्बेडकर ने इस विकृति का लाभ उठाकर स्वयं को स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होनें इस विकृति का स्वतंत्रता के पूर्व लाभ उठाने वालों से समझौता करके अपनी हिस्सेदारी तय कर ली। धूर्त सवर्णों को ऍम्बेडकर की सलाह मे लाभ ही लाभ दिखा और उन्होनें ऍम्बेडकर की सलाह मानकर यह समझौता कर लिया। परिणाम हुआ कि दो–चार प्रतिशत अवर्ण परिवार सवर्णों के लूट के माल मे हिस्सेदारी पा गये और शेष 95 प्रतिशत आदिवासी और हरिजन इस लाभ से आज भी वंचित हैं। हम देख रहें हैं कि ऐसे सभी धूर्त सवर्ण और हिस्सा प्राप्त कर चुके दो–चार प्रतिशत अवर्ण ऍम्बेडकर जी का इतना गुण–गाण करतें हैं जैसे कि वे भगवान ही हों। क्योंकि यदि ऍम्बेडकर जी नही

होते तो धूर्त सवर्णो तथा धूर्त अवर्णो के बीच मे यह समझौता नही होता, तथा हजारों वर्षों से शोषित आदिवासियों अथवा अवर्णों को सामूहिक लाभ देने का कोई अन्य मार्ग निकलता, जिस मार्ग की खोज अॅम्बेडकर जी के स्वार्थ ने लम्बे समय के लिए बन्द कर दी। अब समय आ गया है कि वर्गो के नाम पर दिये जाने वाले सब प्रकार के विशेषाधिकार समाप्त करके श्रम को अधिक से अधिक महत्व दिया जाए। मैं जानता हूॅ कि श्रम को महत्व देने मे न 95 प्रतिशत सवर्ण सहमत होगें न ही पॉच प्रतिशत अवर्ण जो लूट के माल मे हिस्सा लेकर श्रम शोषण मे लगे हुए हैं, तथा आदिवासियों, हरिजनों के नाम पर मलाई खा रहें है।

8. जगदीश गॉधी : लखनउ उ.प्र.।

प्रश्नः— ज्ञानतत्व पत्रिका की 16–31 दिसम्बर 2013 की प्रेरणादायी प्रति प्राप्त हुई। इस अंक मे आपके द्वारा कई आध्यात्मिक विषयों के साथ ही साथ कई अन्य सारगर्भित विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। जिसके लिए हमारी ओर से ढेर सारी बधाईयॉ।

हमारा मानना है कि कालान्तर मे वर्ष 1850 से वर्ष 1950 तक लगभग 100 वर्षो के बीच सारे विश्व मे औद्योगिक क्रॉति हुई। विश्व के सभी देशों के बीच अपना–अपना सामान अधिक से अधिक बेचकर लाभ कमाने की अत्यधिक होड बढने लगी। उस दौड मे शिक्षा और शिक्षालय भी डूब गये। शिक्षालय केवल कमाई के योग्य व्यक्ति बनाने के टकसाल बन गये। इसके पूर्व शिक्षालयों की चिंता होती थी कि बच्चे कैसे अच्छे इंसान बने। यह बात नालन्दा, तक्षशिला, शॉन्ति निकेतन, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मे देखी जाती थी। वर्तमान समय मे अच्छे रिजल्ट बनाने की होड को कम नही किया जा सकता। इस हेतु बालक को अपने सभी विषयों का, संसार का उत्कृष्ट भौतिक ज्ञान मिलना चाहिए, किन्तु इसके साथ ही साथ उसके चरित्र का निर्माण तथा उसके हृदय मे परमात्मा के प्रति प्रेम भी उत्पन्न करना होगा तभी हम प्रत्येक बालक को एक अच्छा इंसान भी बना पायेंगें।

उत्तरः— आपने शिक्षा के माध्यम से चरित्र निर्माण की आवश्यकता बताई है। मैं सैंकडों वर्षों से इस बात को सुनते आ रहा हूॅ और आज भी सुन रहा कि शिक्षा से चरित्र बनेगा, किन्तु आज–तक मुझे कहीं भी ऐसा नही दिखा कि शिक्षा चरित्र निर्माण का माध्यम बनी हो। मैने भी इस विषय पर खूब सोचा है और पाया है कि शिक्षा का चरित्र से दूर–दूर तक संबध नही है, बल्कि सच बात यह है कि शिक्षा क्षमता का विकास करती है, चरित्र का नही। कबीरदास भी चरित्रवान हो सकते हैं और रावण भी चरित्रहीन। यदि कबीरदास शिक्षित होते तो वे अधिक चरित्र की क्षमता का उपयोग कर सकते थे और रावण अशिक्षित होता तो अपनी चरित्रहीनता का इस सीमा तक दुरूपयोग नही कर पाता। पूरे भारत मे स्वतंत्रता के बाद चरित्र मे लगातार गिरावट आयी है और शिक्षा का विस्तार हुआ है। इस बात को हम गलत शिक्षा कहकर तब तक नही टाल सकते, जब तक हम अच्छी शिक्षा का विकल्प नही दे देते। हमारे आदिवासी क्षेत्रों मे 90 प्रतिशत अशिक्षित लोग भी हैं, गरीब भी हैं, शराबी भी हैं किन्तु चरित्र और मानवता के मामलें मे पूरे देश मे उपर वालों की गिनती मे आते हैं। मेरे विचार से सच बात यह है कि चरित्र पर तीन बातों का प्रभाव पडता है–1. जन्मपूर्व के संस्कार 2. पारिवारिक वातावरण 3. सामाजिक परिवेश– यदि इन तीनो का प्रभाव विपरीत हुआ तो शिक्षा चरित्र मे गिरावट का विस्तार करेगी जैसा कि आज स्पष्ट दिख रहा है।

9. चिन्मय व्यास, मालदेवता देहरादुन, उत्तराखण्ड

प्रश्न : — अरविन्द केजरीवाल की आम आदमी पार्टी नये ढंग से काम कर रही है। जनता और जनमत का महत्व बढा रही है। यह देश की राजनीति को नई दिशा देने का प्रयास है। इस पहल को आगे बढाना चाहिए, तथा इसकी समीक्षा करके बताना चाहिए कि इस पहल को ज्यादा कारगार कैसे बनाया जा सकता है। प्रधानमंत्री पद के दो उम्मीदवार मोदी व राहुल गॉधी पद की गरिमा के अनुरूप नही बोलते हैं– ज्यादातर एक दूसरे की नुक्ताचीनी करतें हैं। उन्हें बताना चाहिए कि यदि वे प्रधानमंत्री बने तो देश की समस्याओं के लिए उनकी क्या पहल होगी? क्या उपाय होगें? हालत देखते हुए ऐसा लगता है कि अगले आम चुनाव में दिल्ली जैसे नतीजे और हालात केन्द्र मे भी हो सकतें हैं।

उत्तरः— मै पिछले दो–तीन वर्षों से लगातार लिखता रहा हूॅ कि 2014 मे प्रधानमंत्री पद की लडाई नरेंन्द्र मोदी, अरविंन्द केजरीवाल तथा नीतिश कुमार के बीच ही होगी तथा होनी भी चाहिए। उस समय अरविन्द केजरीवाल के विषय मे ऐसी भविष्यवाणी करने वाला मैं अकेला व्यक्ति था। दिल्ली विधानसभा चुनावों के बाद ऐसी संभावनाऍ टटोलने वाले और भी कई लोग तैयार हो गयें हैं। मैं उस समय भी मानता था और आज भी मानता हूॅ, कि राहुल गॉधी प्रधानमंत्री की इस लडाई मे दूर–दूर तक नही है, और यदि राहुल गॉधी को इस लडाई मे शामिल करने की भूल की गई तो राहुल गॉधी के साथ–साथ उनको शामिल करने वाले भी डूब जायेगें। राहुल गॉधी मे राजनैतिक सूझबूझ का अभाव है। सामाजिक सूझबूझ सबसे ज्यादा है। राजनीतिक प्रतिस्पर्धा मे सामाजिक सूझबूझ तथा राजनीतिक चालाकी के बीच एक संतुलन होना चाहिए, जो राहुल गॉधी मे नही दिखता। नीतिश कुमार मे यह संतुलन दिखता है किन्तु ऐसा लगता है कि नरेंन्द्र मोदी के सामने नीतिश कुमार टिक नही पा रहें हैं, क्योंकि नरेंन्द्र मोदी मे सामाजिक सूझबूझ की अपेक्षा राजनैतिक चतुराई बहुत अधिक है। जिसका मुकाबला नीतिश कुमार भी नही कर पा रहें हैं। अरविन्द केजरीवाल नरेंन्द्र मोदी का अच्छी तरह मुकाबला कर पायेंगें ऐसा दिखता है।

नरेंन्द्र मोदी का विस्तार आदर्श स्थिति ना होकर एक मजबूरी है। नरेंन्द्र मोदी अथवा उनके साथियों मे घोषित तानाशही का मार्ग स्पष्ट दिखता हैं जो मजबूरी तो हो सकता है किन्तु आदर्श नही। अब अरविन्द केजरीवाल के आने के बाद पूरे देश मे दो विचार धाराओं के बीच सीधा संघर्ष हो सकता है। जिसमे एक तरफ होगें तानाशाही समर्थक और दूसरे तरफ होंगें लोकतंत्र समर्थक। जिसका अर्थ हुआ कि नरेंन्द्र मोदी का उभार लोकतंत्र के नाम पर तानाशाही की ओर झुका हुआ होगा और अरविन्द केजरीवाल का उभार लोकतंत्र के नाम पर लोक–स्वराज की ओर झुका होगा। राहुल गॉधी को इस सीधी लडाई मे फॅसकर या फॅसाकर किसी भी तरह लोकतंत्र का नुकसान करना उचित नही होगा। पता नही सोनिया गॉधी किस तरह धृतराष्ट्र बनीं हुई है अथवा गॉधारी। लेकिन सोनिया गॉधी का यह कदम बहुत ही नुकसान दायक है।

10. कुन्दन लाल कुशवाहा खलीलपुर सम्भल उ.प्र.।

ज्ञान तत्व परिवार की सफलता पर हार्दिक बधाई। सफलताओं के लिए परमपिता से शुभकामनाएँ प्रेषित कर रहा हूँ, इन्हें सभी तक पहुंचाने का कष्ट करें–

ज्ञानतत्व लाया सुनो, अजब निराला रंग, जीत गए हैं केजरी, सुनो चुनावी जंग।
नींव पडी सौभाग्य की, इसी जीत के संग, बदलेगा अब शीघ्र ही इस शासन का ढंग।
सुनो उदासी छा गई, बैठे मुँह लटकाए, देख देख अचरज करे और रहे पछिताए।
श्रेय आपको जा रहा, उजडे चारों खेत, सभी दलों पर आ गई दिशा राहु और केतु।
आशा की किरणें उगी, भारत बने महान, लोकसभा के हेतु भी छिडे यही अभियान।
आज सुनो शासन बना बिनु नकेल का उॅट, लोकायुक्त बिठाइये, इसे बॉध दो खूॅट।
संविधान की कैद का अब तो कॉटो जाल, ले आओ मिलकर सभी अद्भूत एक उछाल।
हम सब मिल करके करें सघन देश प्रचार, जिससे आवे हाथ मे संसद का दरबार।
जागो उठो चलते रहो यही समय की मॉग, सो मत जाना आप भी पी शराब या भॉग।
शक्ति रहेगी आपके महाकाल के संग, निर्भय रण करते रहो हनूमान बजरंग।
चौकस रहना होश मे, घुस ना जाए चोर, जिनके कारण है बना, आज देश कमजोर।
मतदाता का जीतिए मिल करके विश्वास, तो अब निश्चित जानिए विजय आपके पास।
वन्द लेखनी कर रहे अब तो कुन्दन लाल, अपनी अपनी बदलिए अब बैठेगी चाल ।
निकल पडो मिलकर सभी लेकर क्रॉति मशाल, ले आओ इस देश मे अदभूत एक उछाल।

उत्तरार्ध

आर्यों की खोज : भाषाशास्त्रीय एवं पुरातात्विक : आचार्य पंकज

सक्तुमिव तितउना पुनन्तों यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।
उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृणवन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासा ।।

–ऋगवेद 10.71.2,4 ।।

अथ किमर्थो वर्णानामुपदेशः?.....
इष्टबुद्धयर्थश्च वर्णानामुपदेशः– इष्टाप्वर्णान् भोत्स्यामहे इति।
नह्यनुपदिश्य वर्णानिष्टा वर्णाः शक्या विज्ञातुम ।।

–पातंजलमहाभाष्यम् 1.1 ।।

शब्दगत एवं रचनागत न्यूनाधिक सादृश्य के आधार विश्व की प्रायः 3000 भाषाएं अनेक परिवारों और जातियों में बॉटी गई है। यद्यपि इन परिवारों की संख्या और सीमाएं सर्वथा निश्चित नही है। ऐतिहासिकतया सबसे अलग–थलग अमरीकी महाद्वीपों के प्रचीन निवासियों के अनेक भाषा परिवार है। ये लुप्त और मृत प्राय भाषाएं सामान्यतया प्रश्लिष्ट योगात्मक या इनकारपोरेटिंग बतायी जाती है। एस्किमों एल्गोंकियन अथबास्कन, इरोक्वियन, मुस्कोगियन, सियुअन, पिमन, शोशोनियन, नहुअत्लन, अजटेक आदि अनेक परिवारों मे नाना क्षेत्रीय और जातीय भाषाएं संगृहीत है। यदि अमरीका मे मानव जाति का आव्रजन नवाश्मयुग मे लगभग दस हजार ई0पू0 मे अलास्का सेतु से माना जाए तो यह स्पष्ट होगा कि वहॉ एस्किमों की प्राचीन भाषाओं मे एक सजातीयता की कल्पना पारिवारिक सादृश्य के आधार पर भले ही की जाए, किन्तु उन सादृश्यों के तुलनात्मक अध्ययन से नवाश्मयुगीन मूल भाषाओं का पुररूद्धार संभव नही है।

प्रशान्त महासागर की प्रकीर्ण द्वीपावलिंयों मे औस्ट्रानेशियायी या मलैपौलिनेशियायी भाषा परिवार का अनेक शाखाओं मे विस्तार है। इस क्षेत्र के उपरी भाग मे मलय, जावा बाली, फिलिपाइन, फॉरमूला आदि की पुरानी भाषाएं जिन्हें मलेशियायी या

हिन्देशियायी शाखा का माना गया है। मलैपौलिनेशियायी परिवार की दूसरी शाखा मलैनेशियायी है जो सोलोमन, फिजी द्वीपों मे मिलती है। गिलबर्ट मार्शल, केरोलिन आदि द्वीपों मे तीसरी शाखा माइक्रोनेशियायी कही गई है। चौथी पौलिनेशियायी शाखा मे माओरी एवं समोआ, ताहिती, हवाई, ईस्टर आदि द्वीपों की भाषाएं परिगणित है। औस्ट्रानेशियायी भाषाएं अभिश्लिष्ट योगात्मक या एग्लूनेटिव कही गई है। पौलिनेशियायी भाषाओं के विभेदन का ऐतिहासिक –पुरातात्विक परिशीलन उसमे संपर्क और स्थानांतरण की भूमिकाएं स्पष्ट करता है।

कुछ लोग मौन–खमेर भाषाओं को औस्ट्रानेशियायी भाषाओं से संम्बद्ध मानतें हैं। मलय, कम्बुज की पुरानी भाषा और अन्नमी इस वर्ग की है। दक्षिणपूर्वी और पूर्वी एशिया से मध्य तक का क्षेत्र हिन्द–चीनी या तिब्बति–चीनी परिवार की भाषाओं का क्षेत्र है। चीनी, तिब्बति, वर्मी और थाई इसके मुख्य विभाग हैं। जापानी, कोरियायी आदि भी इसी क्षेत्र की हैं। ये भाषाएं प्रायः एकाक्षरिक और वियोगात्मक, आइसोलेटिंग है।

चीनी तिब्बति के क्षेत्र से सटे मध्य एशियायी क्षेत्र मे मंगोल भाषा का सीमित विस्तार है, पर तुर्की या अल्ताई भाषा का विस्तार पश्चिम मे एशिया माइनर तक है। तुर्की भी अभिश्लिष्ट योगात्मक या एग्लूटिनेटिव है।

मध्य और दक्षिण अफ्रीका मे बॉटूं, बुशमैन, हॉटनेटॉट आदि भाषा–परिवार है। उत्तरी अफ्रीका मे हामी भाषा– क्षेत्र है जिनमे प्राचीन मिश्री भाषा लुप्त हो चुकी है और समूचे क्षेत्र मे इस्लाम के साथ अरबी घर कर चुकी है। पश्चिमी एशिया सामी भाषा–क्षेत्र है, जिसमें पुरानी बाबुली, अक्कदी आदि के अलावा अब अरबी और पुनरूज्जीवित इबरानी मुख्य है।

दक्षिण मे हामी–सामी और उत्तर मे तुर्की–अल्ताई भाषा क्षेत्रों के बीच मे भारोपिय भाषाएं मिलती है। मध्य –एशिया मे इस समय इनकी एक पतली पट्टी है, जिसमे ईरानी–आर्मानी गिनायें जा सकते हैं। पश्चिम की ओर ये भाषाएं फैलकर अधिकॉश यूरोप को आच्छादित करती है और पूर्व की ओर अधिकॉश भारत को। भारत मे आर्य भाषाएं मुंडा–द्राविड–तिब्बति–वर्मी भाषा परिवारों से घिरी मिलती है। योरोप मे इनके उत्तरी प्रॉत मे फिनो उग्रियन या यूरोलिक परिवार की भाषाएं मिलती है। योरोप से भारत तक फैली होने के कारण ही 'आर्यभाषाएँ' भारोपीय कहलाती है।। योरोप मे भाषाएँ अनेक परिवारों में बॅटी हैं– यूनानी, इतालिक या रोमैंस, कैल्टिक, जर्मनिक और बाल्टोस्लाविक, जैसे– भारत मे उत्तर–मध्यवर्ती हिन्दी, उत्तर–पूर्वी बंगाली, आसामी आदि भाषाएँ, पंजाबी आदि उत्तरी पश्चिमी, मराठी, कोंकनी, सिंहली आदि दक्षिणी आर्य भाषाओं के वर्ग हैं।

विश्व के इन भाषा–परिवारों को देखने से स्पष्ट होता है कि दक्षिणपूर्वी एशिया एवं प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र की अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं के वक्ताओं मे मूल तत्व प्रोटो–ऑस्ट्रेलाइड या निषादजातीय हैं, जिस पर दक्षिणपूर्वी एशिया मे अन्य तत्व आरोपित हैं। पूर्वी और मध्य एशिया की भाषाओं मे किरात मंगोलित जाति का प्रधान्य है। मध्य और दक्षिणी अफ्रीका मे नेग्रिटो जाति का प्रचार है। उत्तर अफ्रीका और एशिया मे जो हामी–सामी भाषाएँ, उनके उपर जो आर्यभाषाएँ और उनके उपर जो तुर्की–अल्ताई भाषाएँ मिलती हैं। उनके वक्ताओं की निश्चित प्रजातीय पहचान नही की जा सकती सिवा इसके कि वे मूलतः नेग्रिटो, मंगोलित और प्रोटो–ऑस्ट्रेलाइड नही थे, और उनकी उत्पत्ति भी उत्तर अफ्रीका एवं यूरेशिया के, अपेक्षाकृत मध्य भाग मे उत्तरी भारत से योरोप तक विस्तृत क्षेत्र मे संभवतः हुई। हामी–सामी ,भारोपीय एवं तुर्की–अल्ताई भाषा के व्यवर्हताओं मे निश्चित शारीरिक पहचान अलग–अलग नही बताई जा सकती, न वर्तमान युग मे आर्य–भाषाभाषियों की ही निश्चित प्रजातीय पहचान बतायी जा सकती है।

नाना भारोपीय भाषाओं की समानताओं की तुलना से एक मूल भारोपीय भाषा की कल्पना की गयी है और उनके आधार पर एक मूल आर्य जाति एवं संस्कृति की कल्पना की गयी है। तुलनीय समानताएं और व्याकरणिक रचना, मूल धातुएं और अनेक ऐसे आधारभूत शब्दों मे मिलती है, जो उधार लिए हुए नही है। ये सामानताएँ ध्वनियों मे और उनके नियम क्रमों मे मिलती है। ये सभी भाषाएँ एकाक्षरिक धातुओं से उपसर्ग एवं परसर्ग लगाकर शब्द निष्पन्न करती हैं और उन शब्दों का वाक्यों मे प्रयोग उनको निश्चित रूपों मे रखकर ही होता है। विभिन्न आर्यभाषाओं मे धातु, उपसर्ग–परसर्ग, रूप आदि मे आश्चर्यजनक एवं नियमानुसारी सादृश्य है। इस सादृश्य को विलिम जोन्स ने पहले देखा, बौप ने समान व्याकरणिक रचना प्रदर्शित की, ग्रिम ने ध्वनि–परिवर्तन के नियम प्रतिपादित किये। अनेक विद्वानों के अनुसंसधानों से एक मूल आर्यभाषा की कल्पना की गयी है, जिससे विभिन्न आर्यभाषाओं का विकास निश्चित नियमों के अनुसार बताया जा सके। उदाहरण के लिए संस्कृत 'पितृ' लातिन 'पातेर' अंग्रेंजी 'फादर' एक ही मूल शब्द के नियमवर्ती भेद है, यह प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार का साम्य अथवा नियत भेद इन भाषाओं मे सैकडों शब्दों मे, मूल धातुओं मे प्रत्ययों और विभिक्तियों मे, कारकों में, लिंग एवं वचन आदि मे मिलता है। यह कल्पना की गई है कि एक मूल से विभक्त होकर इन भाषाओं मे निश्चित नियमों के अनुसार अपने–अपने भिन्न रूप प्राप्त किये।

मूल भाषा मे क्या ध्वनियॉ थी? क्या धातुएं और प्रत्यय थे? क्या समान विरासत के रूप मे मूल शब्द थे? इन सबके तुलनात्मक अनुमान के आधार पर कल्पना की गई है। पर यह स्मरणीय है कि तुलना पर आधारित रूप तुलना के तत्वों को ही प्रस्तुत करतें हैं, मूलभाषा के वास्तविक शब्दों को नही, वे तुलना सूत्र हैं, यर्थाथ शब्द नही। एक समय यह माना जाता था कि संस्कृत मूलभाषा

के संनिकृष्ट है, पर अब यह नही माना जाता। संस्कृत मे मूल व्यंजनों का संरक्षण अधिक हुआ, यूनानी मे मूल स्वरों का, यह कल्पना अब प्रचलित है। मूलभाषा की ध्वनियॉ निम्न प्रकार की मानी जाती हैः–

(अ) स्वर–व्यवस्था –

मूल – ॲ, ऍ, इॅ, ऑ, उॅ, ('श्वा' अव्यक्तवत स्वर)

दीर्घ – आ, ए, ई, ओ, ऊ

संयुक्त स्वर – ह्रस्व– ॲइ, ऍइ, ओइॅ,
ॲउ, ऍउ, ओइॅ

दीर्घ – आइ, एइ, ओइ,
आउ, एउ, ओउ

(ब) व्यंजन –व्यवस्था –

स्पर्श– ..... शुद्ध कंठ्य

कवर्ग – क्, ख्, ग्, घ्, (वेलर)
क्य्, ख्य्, ग्य्, घ्य्, (कंठ–तालव्य)
क्व्, ख्व्, ग्व्, घ्व् (कंठोष्ठ्य)

तवर्ग – त, थ, द,

पवर्ग – प, फ, ब, भ

उष्म – स, ज,

अनुनासिक – म, न

अन्तस्थ – य, व, र, ल

इस प्रकार की मूल वर्णमाला आधुनिक भाषातत्वविदों का अविष्कार है। वह किसी भी वर्तमान या अतीत की भारोपीय भाषा से सर्वथा अभिन्न नही है और उसकी सत्यता संभावना मात्र तक सीमित है। संस्कृत मे 'ए' और 'ओ' संयुक्त और दीर्घ स्वर है। ह्स्व 'ऍ' और 'ऑ' प्राकृत और आधुनिक भाषाओं मे मिलतें हैं। इसी प्रकार अइ, एउ, ओइ, आदि संयुक्त स्वर भी संस्कृत मे न मिलकर उससे निकली भाषाओं मे मिलतें हैं। ऐसी स्थिति मे यूनानी आदि भाषाओं मे नाना संयुक्त स्वर देखकर उन्हें मूलभाषा का संरक्षण न मानकर परवर्ती विकृतियॉ मानना क्या ठीक नही होगा। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यूनानी आदि भाषाओं के उपलब्ध रूप प्राकृत भाषाओं के उदय के समकालीन ही माने जा सकते हैं। मध्य हिन्द–ईरानी भाषागत वैशिष्ट्य को मूल भारोपीय मानने के लिए संस्कृत और यूनानी को मूलभाषा से समान दूरी पर समान रूप से प्रामाणिक मानने का आग्रह हैं। दूसरी ओर घ ध भ जैसी सघोष महाप्राण ध्वनियॉ सिर्फ संस्कृत और तन्मूलक भारतीय भाषाओं मे मिलती है। जिससे संस्कृत की मूलभूमि भारत ही सिद्ध होती है।

संस्कृत को ही मूलभाषा माना जाए, यह आग्रह यहॉ अभीष्ट नही है। वस्तुतः किसी भाषा का मानक रूप शिक्षा, अनुशासन और लेखन से ही स्थिर होता है। अन्यथा वह अनेक भिन्न बोलियों के रूप मे मिलती है। जिनमे किसी को भी दूसरी से स्वतः अधिक प्रमाणिक नही माना जा संकता। विभिन्न बोलियॉ एक मूल भाषा के विकार नही है बल्कि एक मानक भाषा किसी एक बोली का सम्यक व्याकृत एवं आधिकारिकतया शिष्ट–सम्मत रूप है। एक मूल भारोपीय भाषा की कष्ट कल्पना से बेहतर यह कल्पना है कि वह नाना न्यूनाधिक दूरियों के प्रदेशों की अन्योन्य संबद्ध बोंलियों की समाहार थी। इन बोलियों से विकसित भाषाओं का प्राचीन इतिहास अज्ञात अथवा अत्यन्त अधूरे रूप से ही ज्ञात है। उनका व्यापकतम विभाजन शतम् और केन्तुम् परिवारों मे किया गया है। पर उनका भी न तो क्षेत्रीय विभाजन निरपवाद है, न विभाजन काल ही ज्ञात है। मूल भारोपीय की कण्ठीय ध्वनियॉ केन्तुम् परिवार मे कण्ठीय ध्वनियों के रूप मे शेष रहती है जबकि शतम् परिवार मे वह उष्म ध्वनियॉ बन जाती है। मूल भारोपीय शब्द था कमतौम् जिसका केन्तुम लातिन मे और शतम् संस्कृत मे बन जाता है। शतम् परिवार मे हिन्दी–ईरानी, बाल्टोस्लाविक, आर्मीनी और अल्बानी संग्राह्य है। केन्तुम परिवार मे यूनानी, इतालिक, केल्टिक, जर्मैनिक, हिटाइट और तोखारी गिनी जाती है। केन्तुम् परिवार मे स्पर्श ध्वनियों के परिवर्तन का एक प्रसिद्ध नियम ग्रिम द्वारा प्रतिपादित है। इस प्रकार के नियम भाषागत ध्वनि–परिवर्तन को व्यवस्थित रूप अवश्य देतें हैं किन्तु उनका व्यापार निरपेक्ष नही माना जा सकता। भाषा–नियमों का सर्वोत्कृष्ट प्रतिमान पाणिनीय व्याकरण है जिससे आधुनिक तुलनात्मक भाषा विज्ञान को प्रेरणा मिली। पर उसमे भी वस्तुगत तथा बौद्धिक कल्पनाएँ मिली–जुली हैं। व्याकरण के नियम लोक–सिद्ध एवं शिष्ट सम्मत रूढियों के ज्ञापक हैं न कि कारक, न वे स्वतंत्र कार्य–कारण नियमों के प्रतिरूप हैं। उच्चारण की प्रवृत्तियॉ प्रादेशिक रूप से पायी जाती है पर उन्हें शाश्वत या स्थिर नही माना जा सकता। उदाहरण के लिए भारत मे टवर्ग का उच्चारण और स्वराघात का अभाव प्रचुरता से मिलता है, योरोप मे इसका उल्टा हैं। पर भारत मे ही संयुक्त स्वरों एवं व्यंजनों के उच्चारण मे अन्तर आ गया है। इन प्रवृत्तियों मे कितना हाथ आनुवंशिक जातियों का है, कितना समुदायों के अन्योन्य सम्पर्क का, कितना आगन्तुक कारणों से परिवर्तित–संरक्षित सामाजिक परम्परा का, यह निश्चित करना कठिन है, विशेषतया प्रागैतिहासिक युग की अविदित भाषाओं के लिए जिनके आनुमानिक साक्ष्य बहुत बाद के हैं।

भारोपीय परिवार मे संस्कृत ही एकमात्र भाषा है जिसका रूप और इतिहास कम से कम 3500 वर्षों से अधिक का ज्ञात है। उसे अवरकालिक भाषाओं के समक्ष मानकर सबके अधिकतम समान मान (हाइयेस्ट कॉमन फैक्टर) के रूप मे एक मूलभाषा की कल्पना असंदिग्ध नही कही जा सकती। उस भाषा के वक्ताओं के समुदाय के रूप मे आर्यजाति की कल्पना और संदिग्ध है। आर्यभाषा के 'सजातीय' शब्दों से उस जाति की संस्कृति की कल्पना प्रायः पूर्व सिद्ध कल्पनाओं को ही पुष्ट करती है। एक मत से मूलगामी शब्दों मे कुछ संस्कृत के इन शब्दों के मूल

थे– शर्धः, गो, अवि, अज, शूकर, श्वन, अश्व, वृक, ऋक्ष, सारस, हंस, मक्षिका, मधु, भूर्ज, ओक, बीच, विलों (वेतस्?) यव, अयस्। सिंह, व्याग्र, हस्तिन आदि शब्द भारोपीय मूल के नही हैं। इससे सूचित होता है कि भारोपीय जाति मुख्यतया नवाश्मयुगीन आरंभिक कृषि के साथ पशुधन पर निर्भर, समुद्र से दूर पहाडों के निकट और बीच के क्षेत्र मे अवस्थित थी। 'बीच' से क्या आर्य परिचित थे? क्या 'भगोस' शब्द इस अर्थ मे मूलभाषा मे था? क्या मूलभाषा मे जलाशयवाची शब्द समुद्रवाची था? क्या कोई धातुवाची शब्द मूल आर्यभाषा मे था? क्या अयस् शब्द मूलतः भारोपीय एवं धातुवाची था?

इन प्रश्नों पर निश्चय का समुचित आधार नहीं मिलता क्योंकि विभिन्न भाषाओं मे एक ही क्षेत्र अथवा अवस्था सूचित नही है। वैदिक संस्कृत मे 'बीच' या 'एल्म' का कोई चिह्न नही है, समुद्रवाची शब्द स्पष्ट है, अयस् धातुवाची है।

योरोपीय पुरातत्वविदों ने पुरातात्विक साक्ष्य के आधार पर आर्यों को खोजने कर प्रयास किया है। लिथुवानियन पुरातत्वविद मार्या गिम्बुतास ने दक्षिण रूस की कुर्गन संस्कृति को माल आर्य संस्कृति बताया है और उसका विस्तार छठी से चतुर्थ सहस्त्राब्दी ई0पू0 मे दक्षिणीपूर्वी योरोप मे खोजा है। किन्तु किसी पुरातात्विक संस्कृति को आर्य किस आधार पर कहा जा सकता है, यह स्पष्ट नही है। भारत और उसके पास भी योरोप की तरह एकाधिक प्राचीन नवाश्मयुगीन बस्तियॉ मिलती हैं जो संभवतः आर्य हो सकती है। वंक्षु के सन्निकट अक्कुप्रक मे ई0पू0 8000 के लगभग नवाश्मयुगीन बस्तीं मे पालतू पशुओं के चिह्नों मे घोडे का भी पता चलता है। ई0पू0 8000 से ई0पू0 2000 के बीच वहॉ मृद्भांडरहित, मृदभांडीय और ताम्रश्मीय अवस्थाऍ मिलती हैं, जो रूसी मध्य एशियायी बस्तियों से तुलनीय है। ऐसा ही विकास बलूचिस्तान और दक्षिणी अफगानिस्तान मे मेहरगढ और मुंडिकाक मे ई0पू0 6000 से ई0पू0 3000 के बीच उपलब्ध होता है। इस विकास मे तुर्कमेनिस्तानी या मध्य एशियायी संम्पर्क की भूमिका का प्राधान्य नही प्रतीत होता। न उसमे आर्यों की पहचान निश्चित की जा सकती है। जैसे–योरोप मे पाषाण–युग से सभ्यता के युग तक अविच्छिन्न विकास से वहीं आर्यों के मूल निवास की कल्पना की गयी है, वैसे ही भारत मे भी संभव है। इस सम्पूर्ण विकास मे भारत मे एशियायी संम्पर्क वैसे ही निश्चित है, जैसे योरोप मे। नवाश्मयुगीन कॉगडा घाटी की संस्कृति का रूसी–मध्य एशियायी गिस्सार संस्कृति पर प्रभाव बताया गया है। हडप्पा संस्कृति का तुर्कमेनिस्तान तक प्रसार पता चलता है।

गन्धार शवाधान संस्कृति ई0पू0 1400 से ई0पू0 900 तक प्रमाणित है। उसमे तॉबें का और बाद मे लोहे का उपयोग मिलता है। तीसरे स्तर मे पालतू घोडे का पता चलता है, मृतकों का शवाधान मिलता है। इन लक्षणों से इस संस्कृति को आर्य कहा गया है। प्रथम और तृतीय स्तर के नृतत्वीय भेद और तीसरे मे पिछली बस्ती का विध्वंस इस बात का संकेत माना गया है कि तृतीय स्तरीय लोग एक भिन्न तरंग के रूप मे आये थे। पर आर्यों के भारत मे आक्रमण के लिए इस संस्कृति की तिथियॉ बहुत बाद की है। ऐसे ही सेमिटरी 'एच' की आर्यों से पहचान भी अविश्वास्य प्रतीत होती है क्योंकि उस संस्कृति का विस्तार बहुत सीमित है। दक्षिण, मध्य औरद उत्तर भारत मे दूसरी सहस्त्राब्दी मे मिलने वाली ताम्राश्मयुगीन संस्कृतियों को आर्य मानने के लिए कोई निश्चयात्मक प्रमाण नही है। यही स्थिति चित्रित–धूसर भांड स्ंस्कृति की है।

पश्चिमी एशिया मे हिसार 2–3, गियान–2, अनाउ 2–3, शाह टीपे–2 और तुरंग–टीपे मे आक्रमण और प्रवजन की उथल–पुथल ई0पू0 तीसरी–दूसरी सहस्त्राब्दी मे प्रमाणित होती है। शाह टीपे मे पालतू घोडे के चिह्न भी मिलतें हैं। इस युग मे एशिया माइनर मे अभिलेंखों से आर्यों की उपस्थिति सिद्ध होती है, किन्तु जहॉ कहीं घुंमंतु जातियों या आक्रमण को देखने से आर्यों की उपस्थिति सिद्ध नही होती।

वस्तुतः आर्यों की पहचान मात्र भाषा है, भाषारहित भौतिक संस्कृति से उनकी पहचान नही हो सकती है। वरना नवाश्मयुग से लौहयुग तक उनके चिन्ह बहुत स्थानों पर माने जाते सकते हैं। मूल आर्यजाति, मूल आर्य निवास, मूल आर्य संस्कृति और आर्यों का प्रागितिहास, इनकी खोज वस्तुतः उपलब्ध भाषात्मक प्रमाण के अभाव मे शशश्रृंग की खोज बन जाती है। तुलनात्मक भाषाशास्त्र भारोपीय भाषाओं की समानताओं और संम्बन्धों पर प्रकाश डालता है, पर वह उनके लुप्त प्रागितिहास का पुनरूद्धार नही कर सकता। ऐसे ही अभिलेख रहित प्रागितिहासिक पुरातत्व भौतिक सभ्यता का सामान्य विकास बता सकता है, पर किसी विशिष्ट समाज अथवा संस्कृति की अपनी पहचान नही बता सकता।

विशुद्ध भाषाशास्त्रीय अभिकल्पना अथवा विशुद्ध पुरातात्विक अनुमानों से भारोपीय इतिहास का विश्वास योग्य पता नही चल सकता। आभिलेखिक एवं साहित्यिक साक्ष्य के मिलने पर भाषाशास्त्र एवं पुरात्व दोनो ही ज्ञान के साधन बन जाते हैं। दूसरी सहस्त्राब्दी ई0पू0 के पूर्वार्ध मे एशिया माइनर और सीरिया मे भारोपीय भाषाऍ बोलने वालों के शासन के प्रमाण मिलतें हैं। तेल–अल–अर्मना और बोगजकुई के मिस्त्री और खत्ती अभिलेखागारों मे ये प्रमाण सुरक्षित हैं। खत्ती भाषाभषी जिस जनता पर शासन करते थे, उसकी भाषा अन्य थी। स्वयं खत्तियों की भाषा अपनी व्याकरणिक संरचना और कुछ महत्वपूर्ण शब्दों मे स्पष्टतः भारोपीय है पर उसकी शब्द राशि मे विजातीय शब्दों की भरमार है, विशेषतया सुमेरियायी–असीरियायी आइडियोग्राम्स का। खत्ती जाति एशिया माइनर मे कहॉ से आयी और उसका मूल भारोपीय से ठीक संम्बन्ध क्या था, यह संदिग्ध है। खत्ती केन्तुम् परिवार मे रखी जाती है पर वह भारोपीय की दुहिता न होकर स्वसा हो सकती है।

दूसरी ओर तेल–अल–अमर्ना के पत्रों से यह स्पष्ट है कि ई0पू0 15वीं सदी में सीरिया मे भारोपीयभाषी शासक थे। उनके नाम संस्कृत के अत्यंन्त निकट थे–स्वरदात, अर्तमन्यु, सुबन्दु। मितन्नी और खर्री जनों के शास्त्रों मे भी ऐसे नाम मिलतें हैं–अर्ततम, अर्तस्वर। सीरिया के इन राज्यों मे योद्धा वर्ग की आख्या मर्यन्नु (संस्कृत मर्य) मिलती है। यही नही, बोगजकुई के अभिलेखों मे खत्ती सम्राट, शुब्बिलुल्यूमा और मितन्नी शासक मत्तिवाज के बीच एक संधि मे जिन अनेक देवताओं की शपथ उठाई गयी है उनमे कुछ स्पष्ट रूप से भारतीय देवताओं के नाम हैं–मित्र, वरूण, इन्द्र और नासत्य। खत्ती मे द्विवचन न होने के कारण 'मित्रावरूणा' इस देवता–द्वन्द्व को बताने के लिए पृथक–पृथक बहुवचन का प्रयोग किया गया है, यही प्रकार 'नासत्या' के लिए अपनाया गया है। इन्द्र और वरूण दोनो ही वैदिक देवता है। इसके अतिरिक्त एक किककुलि नाम के मितन्नी का लिखा हुआ आजि–धावन का प्रकरण भी वहॉ मिलता है। जिसमे एक–वर्तन, तेर–वर्तन पंज–वर्तन, सत्त–वर्तन, ना–वर्तन, आदि शब्द मिलतें हैं, जो स्पष्ट ही संस्कृत के हैं। अवेस्ता मे एक के लिए ऐव मिलता है। ऐसे ही 'सत्त' प्राकृत रूप से अभिन्न है और अवेस्ता के हप्त (परवर्ती हप्त) से दूर। इन सभी साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि ई0पू0 1500 के आस–पास वैदिक संस्कृतभाषी भारतीय शासक, योद्धा और व्यापारी सीरिया मे बसे हुए थे। ये भारत से पश्चिम की ओर गये हुए थे। यही मानना समुचित प्रतीत होता है, जैसा कि एदुआर्द मायर ने भी 1928 ई0 मे माना था। 1977 ई0 मे बरो का कथन है कि इन सीरियायी आर्यों की तीन प्रकार से पहचान संम्भव है–वे ईरानी हो सकतें हैं, भारतीय हो सकते है, इन दोनो के पूर्वज हो सकते हैं। इन तीनों विकल्पों मे उन्हें भारतीय मानना ही इस समय सर्वाधिक सम्मत है। पर वे भारत से गया हुआ न मानकर वहॉ से गया हुआ मानते हैं जहॉ से वे भारत आये थे।

इन आभिलेखिक साक्ष्यों से पूर्व मे भी कस्सी राजवंश के शासकों और देवताओं के नामों मे वैदिक नाम मिलते हैं। जैसे–सूर्यस्, मरूतस्, अबिरत्तस्। कस्सियों का शासन लगभग 1750 ई0पू0 से प्रारम्भ होता है। ईराक की मित्तनी संस्कृति मे मयूर का अभिप्राय मिलता है। मितन्नी सिलिण्डर सीलों मे मयूर चित्रित मिलता है। यह स्मरणीय है कि हडप्पा संस्कृति मे इस प्रकार का अभिप्राय सर्वप्रथम उपलब्ध होता है। हडप्पा संस्कृति का पश्चिमी एशिया से व्यापारिक संम्पर्क ई0पू0 तीसरी सहस्त्राब्दी से था। ई0पू0 दूसरी सहस्त्राब्दी मे भारत और पश्चिमी एशिया मे यह संम्पर्क एक दूसरे रूप मे मिलता है, जिसमे आर्य भाषाभाषियों की भूमिका स्पष्ट नही है।

एक प्रचलित मत के अनुसार आर्य एक लडाकू और असभ्य जाति थी। जिसके समुदायों ने अनेकत्र स्थानीय जनता को पराजित कर अपना शासन और भाषा उन पर आरोपित की किन्तु उन्होनें स्वयं उन्नततर विजित जाति की सभ्यता को क्रमशः अपना लिया। खत्तियों का इतिहास इसका एक दृष्टान्त है। मित्तनी और कस्सी इतिहास मे भी इसकी झलक है। यूनानी इतिहास इसका महत्वपूर्ण निर्दशन है। मिनोआयी–संस्कृति पर अधिकार स्थापित कर यूनानी संस्कृति उसकी ऋणी न सिर्फ भौतिक–सामाजिक जीवन, धर्म और कला मे बनी बल्कि स्वयं उसकी भाषा मे बहुत से शब्द बाहरी मूल के भर गये।

एक मत के अनुसार भारत मे भी ऐसा ही हुआ। असभ्य पर लडाकू आर्य जाति ने सिन्धु सभ्यता का विध्वंस किया पर उसके अनेक तत्वों को क्रमशः अपना लिया। यदि सिन्धु–सभ्यता सर्वथा आर्येतरीय है तो इसमे मौलिक सत्य स्वीकारना होगा। यद्यपि आर्यों को विध्वंसक नही माना जा सकता तो भी वैदिक संस्कृति को विशुद्ध आर्य न मानकर एक मिली–जुली संस्कृति मानना ही ठीक रहेगा। वेद भी किसी लडाकू बर्बर जाति का प्रतिनिधित्व नहीं करते बल्कि एक जाति–निरपेक्ष विश्ववारा संस्कृति व्यक्त करतें हैं। आर्य और द्राविड आदि के भेद और संघर्ष के स्थान पर उनके शांन्तिपूर्ण सम्बन्ध और समन्वय को ही इस संस्कृति का मूल मानना होगा। वस्तुतः संस्कृति और सभ्यता के इतिहास मे आधुनिक प्रजातीयतावाद और उस पर ही निर्भर संकीर्ण राष्ट्रीयतावाद का कोई स्थान नही है। ये विश्ववारा संस्कृति की अन्तर्भूत प्रतनु धाराऍ है।

पिछले विवरण से यह स्पष्ट होगा कि भारत मे आर्य और आर्येतरीय भाषा परिवारों का सर्वथा और विरोधात्मक पार्थक्य नही रहा है। इन सभी परिवारों के बीच मे और उनके अंन्दर आदान–प्रदान चलता रहा है। जो कि सॉस्कृतिक समन्वय की परम्पराओं से जुडा रहा है। आर्य–अनार्य, आर्य–द्रविड आदि प्रभेंदों को उजागर करने के पीछे वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता राजनैतिक उददेश्यों से रंजित हुई है। जैसे भारत एक सॉस्कृतिक इकाई है। ऐसे ही वह एक समन्वित भाषाई क्षेत्र है। इस स्थिति का आरम्भ प्रागैतिहासिक है और पूर्व वैदिक युग को इसके सहारे ही समझना चाहिए। मूल आर्य भाषा के स्वरूप, प्रसार और पारस्परिक आदान–प्रदान के विषय मे नवीन भाषाशास्त्रीय अनुसंधान इसी दिशा मे संकेत करता है। द्राविड भाषा के सम्बन्ध मे भी अब पिछली मान्यताओं से हटकर भी उहापोह जारी है।